Volume-2, Issue-1, January-2015 ISSN: 2349-7637 (Online)

RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)

Research Paper

Available online at: www.rhimrj.com

भीष्म साहनी की कहानियों में व्यक्त – "विभाजन की पीड़ा"

Prof. Bharti Oza,
Assistant Professor,
Government Arts College,
Gandhinagar, Gujarat (India)

सन् 1947 में भारत विभाजन की घटना ने कई रचनाकारों की संवेदना को छुआ और इस विषय पर हिन्दी के अच्छे रचनाकारों ने अपनी लेखनी चलायी, तो कहीं-कहीं कुछ रचनाकारों को इस त्रासदी की भयावहता ने लिखने के लिए मजबूर किया । इनमें से ज्यादातर लेखक उस इतिहास के कुचक्र के साक्षी रह चुके थे तो कई ने इस पीड़ा को भोगा और झेला था । अपनी ज़मीन, अपने परिवार और रिश्तों से कटने का दर्द उनकी कहानियों में हम देख सकते हैं, "भीष्मजी के बारे में लगभग हर आलोचक ने यह लक्ष्य किया है कि सांप्रदायिक आधार पर देश का विभाजन और उसके बाद आबादियों का विस्थापन और इस क्रम में जनता का ध्रुवीकरण और इसके परिणामस्वरूप दोनों तरफ फूटी व्यापक हिंसा उनका केन्द्रीय कथ्य है ।"[1]

भीष्मजी की कहानियाँ अमृतसर आ गया है, निमित्त, पाली, बीरो, मुझे मेरे घर छोड़ आओ, आवाज़ें आदि में कहीं भारत विभाजन की पीड़ा से व्यथित पात्रों की संवेदना, कहीं परिवेश से क्रुद्ध आदमी या मानवीय रिश्तों की कथा कहती हैं । 'जहूर बख्श', 'सरदारनी' और 'झुटपुटा' विभाजन की त्रासदी को झेलने पर भी सम्प्रदायविहिनता लिए पात्रों की कहानियाँ हैं, जहाँ हमें मानवीयता के दर्शन होते हैं ।

'अमृतसर आ गया है' कहानी में आज़ादी का स्वतंत्रता दिवस समारोह, पाकिस्तान के बनाए जाने का ऐलान और सांप्रदायिक दंगों के माहौल का जीवंत वातावरण है । दिल्ली में स्वतंत्रता समारोह में शामिल होने ट्रेन में जा रहा एक दुबला-पतला हिन्दू बाबू का मन सांप्रदायिकता से उद्दीप्त होकर जब सब सोये थे तब अंधेरे में एक निर्दोष की कैसे हत्या करता है, इसका मार्मिक अंकन इस कहानी में है

कहानी में चलती ट्रेन में चढ़ रहे गरीब हिन्दु, उसकी पत्नी और बेटी को लात मारकर गिराना इसमें घटना का केन्द्र है, वैसे इस घटना के पहले ट्रेन चली तब से पठानों के शब्द "खा ले, बाबू, ताकत आयेगी । हम जैसा हो जाएगा । बीवी भी तेरे साथ खुश रहेगी । खाले दालखोर, तू दाल खाता है इसलिए दुबला है ।"[2] आगे वे कहते हैं "मांस नहीं खाता ए, बाबू तो आओ जनाना डब्बे में बैठो, इधर क्या करता ए ?"[3] तभी वजीराबाद स्टेशन पर से चढ़े मैले-कुचैले कपड़ोंवाला आदमी, उसकी पत्नी और लड़की तीनों को पठान वहाँ से चले जाने को कहते हैं, वहाँ डिब्बे में ऊपर बैठे पठान ने लात जमा दी जो उस आदमी की पत्नी के कलेजे में लगी और उनका आधा सामान नीचे छूट जाने से तीनों उतर जाते हैं । तभी इस घटना की साक्षी डिब्बे में बैठी एक बुढ़िया बोली "तुम्हारे दिल में रहम मर गया है । छोटी-सी बच्ची उसके साथ थी । बेरहमो, तुमने बहुत बुरा किया है, धक्के देकर उतार दिया है ।"[4]

स्टेशन पर पथराव का माहौल और ट्रेन पर भी पथराव होने के डर से दुबला बाबू फर्श पर लेटता है, तब फिर से एक पठान मसखरी करता है "ओ बेगैरत, तुम मर्द ए कि औरत ए ? सीट पर से उठकर नीचे लेटता ए ।"[5] बाबू चुप था तब उसने उसे फिरसे जनाना डिब्बे में बैठने को कहा ।

कहानी में हम ट्वीस्ट तब देखते हैं, जब धीरे-धीरे पठान सोने लगे, रात होने लगी मगर फिर भी ट्रेन के बाहर के वातावरण से भीतर बैठे कुछ मुसाफिरों के मन में दहशत थी, तब सहसा बाबू चिल्लाता है कि – हरबंसपुरा निकल गया है । और फिर ऊँची आवाज़ में बोला "अमृतसर आ गया है ।"[6] और उसमें जैसे उर्जा का संचार हुआ "ओ बे पठान के बच्चे नीचे उतर तेरी माँ की---नीचे उतर, तेरी उस पठान बनानेवाले की मैं--- ।"[7] जैसे ही स्टेशन पर ट्रेन रुकी तीनों पठान सरककर दूसरे पठानों के साथ अगले डिब्बे में चले गए ।

धीरे-धीरे गाड़ी चलने लगी और सब सोने लगे । तभी चलती ट्रैन में एक मुसलमान चड़ने की कोशिश करता है, अब वह बाबू हाथ में छड़ लेकर उस पर दे मारता है और वह नीचे दौड़ रही उसकी औरत पर गिरता है । थोड़ी देर बाद सीट पर बैठे बाबू को देखकर सरदार कहने लगा "बड़े जीवटवाले हो बाबू, दुबले-पतले हो, पर बड़े गुर्देवाले हो। बड़ी हिम्मत दिखायी है।"[8] तभी बाबू के चेहरे पर बीभत्स-सी मुसकान आती है। "भीष्मजी मुसकानों के गहरे जानकार थे और इन्हीं के मार्फत चरित्रों के मनोविज्ञान की थाह लेते थे।---ये मुस्कानें पाठक को साहनी के मर्म और पात्रों की अंतरात्मा तक पहुँचने में भारी मदद करती हैं ।"[9] हम पूरी कहानी में देखते हैं कि स्थल के अनुसार जातिगत आवेग आरोह-अवरोह में परिणत होता है । भीरू दिखनेवाला दुबला बाबू अमृतसर आते ही अपनी मर्दानिगी का परिचय देता है । उन आवेगों का शिकार बनता है आम इन्सान । कहानी में डिब्बे में बैठे लोग सुरक्षित हैं, किन्तु अधिकतर सब विभाजन के शिकार होने से निःसहाय अवस्था में हैं, पीड़ित हैं । कहानी में विभाजन और सांप्रदायिक तनाव के कारण एक दुर्बल बाबू कितना नृशंस बन जाता है यह लेखक का मानवीय चेतना को संदेश है ।

'पाली' कहानी में देश के बंटवारे के समय लोग अपना बोरिया-बिस्तर लेकर शरणार्थी बनकर काफिलों में जा रहे थे, जिसमें मनोहरलाल, उसकी पत्नी, चार साल का बेटा पाली और छोटी बेटी ये चारों थे । कहानी के आरंभ में लेखक कहते हैं "पर गुंझल न तो कथा- कहानी में पूरी तरह सुलझ पाते हैं, न जीवन में ।"[10] मनोहरलाल और कौशल्या के जीवन में एक गुंझल सुलझता है तो दूसरा शुरू हो जाता है । लारियों में शरणार्थी चढ़ रहे थे, कौशल्या चढ़ गई और मनोहरलाल से पाली का हाथ छूट जाता है, जब मनोहरलाल उसे ढूंढ रहा था तब लारी चलने लगती है । कौशल्या के चीखने से लारी रुकती है मगर वह बिना पाली को लिए उसमें चड़ जाता है ।

इस ओर निःसंतान शकूर अहमद को पाली मिलता है और उसे वह अपने घर ले जाता है । अब मौलवी की कट्टरता उसे सुन्नत करवाके इल्ताफ शकूर अहमद में रूपांतरित करती है । पाली के साथ छोटी बच्ची को उसी दिन खो देने से कौशल्या की हालत दिन-ब-दिन बिगड़ रही थी । दो साल की तलाश के बाद पाली मिलता है, किन्तु दोनों में से कोई भी एकदूसरे को पहचान नहीं पाते, तभी पाली के बचपन का फोटो दिखाने पर वह तुरंत अपने माता-पिता को पहचान गया और मनोहरलाल के हृदय का बाँध टूट पड़ा । कौशल्या की स्थिति सुनकर जैनब का दिल पिघलता है और कठोर हृदय से हर हद पर अल्ताफ से मिलने का वचन लेकर वह उसे उसके माँ-बाप को सौंपती है । इस ओर अपने घर शाम को आँगन में मनोहरलाल के वहाँ लड्डू बँट रहे थे, तभी पाली दरी लेकर नमाज़ अदा करने लगता है, वहाँ पर ठेकेदार चौधरी हवन द्वारा उसका शुद्धिकरण करके उसका पाली में रूपांतरण करवाता है । कहानी भारत विभाजन से एक परिवार के बिखरकर फिर मिलने की पीड़ा को व्यक्त करती है ।

साथ-साथ कहानी में लेखक ने मौलवी और चौधरी जैसे कहे जानेवाले धर्म के ठेकेदारों पर लोगों के बाहरी क्रियाकर्म द्वारा जबरन बाहरी परिवर्तन को लेकर करारा व्यंग्य किया है । कहानी हमें बताती है कि जब तक ऐसी अंधी कट्टरता जीवित रहेगी सांप्रदायिकता का तनाव बना रहेगा ।

कहानी ***'बीरो'*** की सलीमा बचपन में पाकिस्तान बनने से उसके माता-पिता और सगे-संबंधी बसों में चढकर भारत चले गए और वह भीड़ में कहीं खो जाती है । पहले वह सिक्ख थी और आज मुस्लिम, बच्ची बीरो को उसे किसने पनाह दी, किसने उसका नाम सलीमा बेगम रखा, बचपन कहाँ बीता कुछ याद नहीं था । वह बैसाख के दिनों में हर साल जब सिक्खों की टोली गुरुद्वारे में माथा टेकने गीत

गाती हुई आती; तब दौड़कर छज्जे पर जाकर उस टोली में वह अपने भाई को ढूँढने लगती । इस बार हिन्दुस्तान से सिक्खों की टोली आई और वह दौड़कर छज्जे पर जाकर उन्हें देखकर रोने लगी, दहलीज पर खड़ा उसका बेटा सलीम यह सब देख रहा था । वह अपनी माँ से रोने का कारण पूछने पर वह उसे सब बताती है । लड़के का प्रश्न कि "माँ, अगर वह आज तुझे पहचान ले तो तू उसके साथ चली जाएगी ?"[11] उसे भीतर से झकझोरता है ।

यहाँ कहानी में हम देखते हैं कि बैसाख का यह एक दिन उसकी मन की पीड़ा को कुरेदता था; और वह छज्जे पर जाने लगती, किन्तु आज टोली वापस लौटी और जिस छैने-करताल की धून उसे बेचैन करती और वह भागती उसकी जगह बेटे का प्रश्न सुनकर सोचने लगी कि "भावना के जिस कच्चे धागे से बँधी मैं बरसों से झूल रही थी, वह निपट पागलपन था, उसमें कोई सार नहीं था ।"[12] वह अब वर्तमान में जी रही थी, उसके तीन बेटों में से सलीम हस्तहान की तैयारी में लगा था; महमूद और रफीक में से एक काबुल में व्यापार करता और एक खेत संभालता । अब वह छोटी मकसूदा के विवाह की तैयारी में लगी थी, क्योंकि उसके पति की रेल्वे में नौकरी के कारण वह घर पर कम रहता था । सलीम ने जब से बचपन में माँ की परिवार से बिछड़ने की बात सुनी थी; तब से और ऊपर से माँ के आँसू उसे भीतर से विचलित करने के साथ उस अतीत की खोज के लिए बेचैन बनाते हैं ।

एक दिन पासवाले कस्बे के बस में साथ में सीट पर बैठे सरदारजी ने कहा कि कुलबीर की बहिन खो गई थी, "कुलबीर का बाप और मैं एक ही स्कूल में पढ़े हैं । तू उससे मिल ले । क्या मालूम उसकी बहिन ही तुम्हारी माँ हो ।"[13] इस बार फिर बैसाखी में कोई बेटा घर पर नहीं था और छैने-करतालों की ध्वनि सुनाई दी; सलीमा अब वापस उस अतीत में जाना नहीं चाहती जिसका कोई मतलब नहीं था, अतः वह सोयी रही । किन्तु जैसे-जैसे छैने करतालों की आवाज़ घर के सामने गूँजने लगी तो वह छज्जे पर जा पहुँची, उसने देखा सरदारों की टोली में एक वयोवृद्ध सरदार से बाते करता सलीम भी था । वह उन्हें अपने घर ले आया । सलीमा बार-बार बचपन की यादें बता रही थी मगर सरदारजी से तार नहीं जुड़ रहा था, तभी भाई के पेड़ से गिरने की घटना कही और देखती है कि उसके पैर में वह निशान अब भी था; तभी फिर से टोलियाँ लौटने लगी और लौटते वक्त सरदार की आँखें भर आयी ।

कहानी में फिर हम देखते हैं कि छः महिने बाद सलीमा उपहार, फल, मिठाई वगैरह लेकर कुलबीर वीरजी की छोटी बेटी की शादी में हिन्दुस्तान आने को बेताब थी । अपने भाई से मिलाने की खुशी में सलीमा की आँखें बेटे को सहला रही थीं । भीष्मजी ने पूरी कहानी में विभाजन की त्रासदी से परिवार से बिछड़कर बीरो से सलीमा बननेवाली और वर्षों तक इस पीड़ा को झेलनेवाली एक नारी की कथा और उसके बेटे सलीम के द्वारा बिनसांप्रदायिकता और रिश्तों के महत्व को उद्घाटित किया है ।

कहानी ***'मुझे मेरे घर छोड़ आओ'*** में देश के बँटवारे के दिनों में शरणार्थियों से भरी रेलगाड़ी वज़ीराबाद स्टेशन पर रुकी । ट्रेन में से सब पानी के नल की ओर लपक रहे थे, जिसमें एक बुज़ुर्ग भी उतरा, इतने में ट्रेन ने सीटी बजायी तो सब ट्रेन की ओर भागने लगे । नल खाली देखकर बूढ़ा पानी पीना चाहता था, मगर ट्रेन को चलती देखकर वह आकर ट्रेन में चड़ने लगा । चलती ट्रेन में चड़ने की वजह से उसके घुटने छिल गए और ठुड्डी ट्रेन से टकराने के कारण मुँह से खून बहने लगा, उसे एक मुसाफिर ने पानी देता है । चोट का दर्द, अकेलापन और निःसहायता के कारण वह बच्चों की तरह रोने लगा "मैं अपने घर जाऊँगा । मुझे मेरे घर छोड़ आओ । मैं अपने घर जाऊँगा ।"[14] सबके समझाने पर वह उसी तरह रोये जा रहा था । किसीके घर का ठिकाना नहीं था तो उसे छोड़े कहाँ; उसे अपने गाँव मियानी जाना था । एक मुसाफिर चिल्लाया "दिमाग तेरा ठिकाने है क्या ? घर से बेघर होकर हम मारे-मारे फिर रहे हैं, और तुम्हें मियानी याद आ रही है ? उधर तेरी माँ बैठी है ?"[15] सब अपनी ज़मीन से कटने का दर्द संजोये थे और वे अपने भविष्य को लेकर चिंतित थे । सबको लगा बूढ़ा पगला गया है, सब बैठ गए, तभी एक बुढ़िया उसकी बोली में कहती है कि तुम्हें मैं ले जाऊँगी और उसके दिल को सहारा मिलता है और वह ओर ज़ोर से रोकर कहता है "ओ रब्बा डा दिया । मैंनू कित्थे लिया सुटिया ई ?"[16] अब सब आश्वस्त हो गए कि वह पगलाया नहीं ।

इस कहानी में विभाजन की त्रासदी मानव मन को कैसे त्रस्त करती है उसे भीष्मजी ने रेखांकित किया है; विभाजन के दौरान हुए दंगों में लोगों में रही मानवीयता एकदूसरे की पीड़ा को कैसे सहारा देती है यह व्यक्त करती है ।

भीष्मजी की ऐसी ही एक कहानी है ***'निमित्त'***, जिसमें मानवीय संवेदना के साथ-साथ परिस्थितिजन्य भय और आशंका कैसे कहानी के मुख्य चरित्र को भाग्यवादी बना देती है इसका मार्मिकता से अंकन यहाँ हुआ है । यह बुज़ुर्ग फैक्टरी में सब काम देखते और वहीं उनका बंगला भी था । देश के बँटवारे के दिनों में दंगों के कारण फैक्टरी बंद हो गई । पटियाला में मुसलमान शरणार्थियों का कैम्प खुला, जहाँ से सबको पाकिस्तान भेजना था । एक दिन शाम के वक्त इमामदीन पटियाला जाने के लिए एक कार माँगता है, बुज़ुर्ग ड्राइवर शेरसिंह को भेजता है । उसका मानना था कि "जो मेरे पास आया है तो भाग्य का निमित्त बनकर । वह भी निमित्त था, मैं भी निमित्त था, शेरसिंह ड्राइवर भी निमित्त था ।"[17] थोड़ी देर बाद एक हिन्दूओं का दल बुज़ुर्ग को घेरने आया और कहने लगा "तुमने अपनी कौम के साथ गद्दारी की है ।"[18] तब बुज़ुर्ग ने इमामदीन मिस्त्री का पीछा करने दूसरी कार दे दी । इनको कार रास्ते में मिली और शेरसिंह गाड़ी से थोडी दूर इमामदीन को कपड़े लते के साथ जला रहा था । दोनों कारें वापस आयी । वास्तव में इमामदीन पटियाला से पाकिस्तान चला गया और आज भी हर बैसाखी पर बुज़ुर्ग को खत लिखता है । उसने बताया कि शेरसिंह ने उसे भगाकर सिर्फ उसकी गठरी को आग लगायी थी ।

कहानी के अंत में बुज़ुर्ग कहता है "एक दिन बारह –गये, और एक नहीं बचा । दूसरे दिन एक गया और अपने ठिकाने पर जा पहुँचा ।"[19] कहानी में बुज़ुर्ग मुसलमान को भगाता है और उसे मारने के लिए बेचैन लोगों को उसका पीछा करने गाड़ी भी देता है और उपर से इसे निमित्त मानकर अपना बचाव भी करता है । कहानी में शेरसिंह का चरित्र संप्रदायविहीनता से पाठक को प्रभावित करता है ।

कहानी ***'ज़हूर बख्श'*** में भीष्मजी बताना चाहते हैं कि दंगो के दौरान ज़हूर बख्श जैसे लेखक भी हैं, जो सांप्रदायिकता के शिकार हो जाते हैं और उनके घर की दीवार के साथ-साथ उनकी कहानियाँ, अनुवाद तथा लेखों की पांडुलिपियाँ अधजली हो जाती हैं । घर का दरवाजा खटखटाने पर उनकी पत्नी दरवाजा नहीं खोलती, अंदर ज़हूर बख्श को विश्वास था कि "इस शहर में कौन है जो मुझे नहीं जानता ।"[20] और यही विश्वास उन्हें थोड़ी दूर खड़े हिन्दी पत्रिका कार्यालय में काम करनेवाले विश्वेश्वर पर था, मगर लोगों ने उनके घर में निराला, पंत, महादेवी के काव्यग्रंथ और सब कुछ लूट लिया और उसे एक झापड़ मारकर घसीटकर बाहर ले गए । किसी ने कहा "म्लेच्छ हिन्दी में लिखता है ।"[21] थोड़ी देर में उसके घर से आग और धुआँ उठने लगा, वह सब पाण्डुलिपियाँ बाहर लाने लगा, जिससे उसके हाथ जल गए ।

उस इलाके का दौरा कर कहा कथानायक ज़हूर बख्श से मिलने पर कहता है "कहानियाँ लिख डाली जो लिखनी थीं । यह मेरी आखिरी कहानी थी ।"[22] दो साल बाद सांप्रदायिकता के सवाल पर हुए संमेलन में कथानायक यहाँ आता है, तब उसे ज़हूर बख्श उलझे बाल और फटे कपड़ों में सड़क के बीचोबीच डोलता नज़र आता है, थोड़े समय बाद वह उसकी मृत्यु की खबर भी सुनता है । कहानी के अंत में भीष्मजी कोट करते लिखते हैं कि यह कहानी उन्होंने श्रीमती सुभद्रा जोशी से सुनी हुई सच्ची कहानी है । कहानी में लेखक दिखाना चाहते हैं कि धार्मिक कट्टरता इतनी अंध होती है कि एक मुसलमान कवि को हिन्दी में लिखने की सज़ा उसकी सर्जनात्मकता को जला देती है । कहानी में वे लिखते हैं "पाण्डुलिपियाँ जो लिखी जाती हैं तो दिल के खून से लिखी जाती हैं । एक-एक पाण्डुलिपि पर ज़िन्दगी के वर्ष खप जाते हैं ।"[23] लेखक दिखाना चाहते हैं कि एक रचनाकार की संवेदना भाषा बदलने से बदल नहीं जाती क्योंकि वह समूह की, मानव की संवेदना होती है ।

भीष्मजी एक कहानी ***'सरदारनी'*** में ऐसी ही मानवीय संवेदना को रखते हैं, जो जाति या धर्म से ऊपर है । मास्टर करमदीन को अकेला होने से पड़ोस में रहती सरदारनी सुबह में हर हर महादेव और अल्लाह-ओ अकबर सुनाई पड़ने पर प्रभात के झुटपुटे में अपनी कटार लेकर उसे जगाने पहुँच जाती । वह मुसलमान इलाके में नहीं रहता । दंगो के कारण स्कूल बंद हो जाने से मास्टर करमदीन घर आता है । स्थिति को भाँपकर सरदारनी उसे कटार लेकर मुसलमानों के मोहल्ले में पहुँचा आती है । सरदारनी ने पहले दरवाज़ा खटखटाया, करमदीन को लगा अब मेरी मौत निश्चित है, किन्तु अपना मोहल्ला देखकर उसे ढाढस होता है । यह सच्ची घटना भी लेखक ने सुभद्रा जोशी के मुँह से सुनी थी जिसका कहानी में रूपांतरण करके यहाँ संप्रदाय या जाति से उपर उठकर मानव संवेदना की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है ।

ऐसी ही एक कहानी है ***'सलमा आपा'*** । कथानायक जब जाम्बिया से करांची होकर हिन्दुस्तान आ रहे थे तब उनका जहाज करांची हवाईअड्डे पर शाम पांच बजे की जगह रात ढाई बजे पहुँचता है । उसे वहाँ एक संपादक के घर दो दिन रुकना था किन्तु इतनी रात वह कहाँ जाए ? कथानायक जाम्बिया में लेखकों की बैठक में सलमा आपा नामक औरत से मिले थे, जो अपने बचपन के संस्मरण उनके साथ बाँटती । उसका भाई करांची में 'सोसाइटी' नामक बस्ती में रहता था जहाँ उसके बंगले के सामने खुला मैदान था । कथानायक पत्नी, बच्चों, माँ और मुस्लिम डाइवर के साथ उस पते को ढूंढकर थक जाता है और अंत में पत्नी ने हवाई अड्डे पर वापस जाने को कहा, तभी कथानायक को आपा ने कही थी वैसी जगह दिखाई दी । दरवाजा खटखटाने पर एक वयोवृद्ध व्यक्ति ने दरवाजा खोला और सभी अंदर गए, धीरे-धीरे सब सो गए, बुज़ुर्ग और कथानायक काफी बातें करने के बाद और सलमा आपा के बारे में वह कैसी है यह पूछा फिर सो गए । सुबह एडीटर को फोन करने पर वह आकर ले जाता है ।

कहानी के अंत में कथानायक को लगता है कि शायद वह सलमा आपा का भाई नहीं था । कथानायक और उसकी पत्नी के भीतर भारत-पाकिस्तान बँटवारे के दिनों की जातीय हिंसा का डर जाग उठा, उसे लगता है "वह करना चाहे तो कुछ भी कर सकता था ।"[24] किन्तु मुस्लिम टेक्सी डाइवर रात के अँधेरे में उन्हें घर ढूंढने में मदद करता है । शंभु गुप्त लिखते हैं कि "कहानी की संरचना संकेत से बताती है कि यह बुज़ुर्ग वास्तव में सलमा आपा का भाई नहीं था । यह तो दर असल इस इलाके के उन बहुसंख्यक नेक इन्सानों में से एक था, जिनके चेहरे पर पहचान और सद्भावना की हँसी ऐसे अवसरों पर खिली पाई जाती है । यह मुस्कान इस पूरे इलाके के स्त्री-पुरुषों का स्थायीभाव है---जो अंतःप्रेरणा और मन की सूक्ष्म अनुभूतियों से, जो मनुष्य मात्र का नैसर्गिक अभिलक्षण है ।"[25]

'आवाजें' कहानी में भारत विभाजन के बाद शरणार्थी बनकर अपरिचित में से परिचित बनकर फिर से एक नये मोहल्ले के निर्माण की कथा है, जहाँ शुरू में लोग जमीन से कटने की पीड़ा लेकर आए थे और आज तीन पीढ़ियों के बाद अपनी-अपनी ज़िंदगी में व्यस्त हो गए हैं । इनमें से कुछ इस दुनिया को अलविदा भी कर गए हैं तो कुछ अपने बूढ़ापे को जैसे-तैसे व्यतीत कर रहे हैं । पहले "इसी इलाके में, दसियों साल पहले, दिन को सुअर घूमते थे और रात को सियार बोलते थे ।"[26] यहाँ बिजली नहीं थी । कोई सिंध से तो कोई पश्चिमी पंजाब से यहाँ दिल्ली के निर्जन इलाके में बसे थे । धीरे-धीरे सब अपने काम में व्यस्त होने लगे । एक दिन सबने पार्टी का आयोजन किया जिसमें मक्खनलाल 'डब्बू' प्रादेशिक बोली में गीत गाते-गाते रो पड़ा और बोला "यह माँ---यों गीत ही ऐसा है जी, दोस्त यार आँखों के सामने आ जाते हैं । यहाँ तो मैं अभी भी परदेसी हूँ जी, दिल अभी तक ठिकाने नहीं आया---।"[27] विभाजन के बाद शरणार्थी बनकर ज़मीन से कटने की पीड़ा कभी-कभी दिल को बेचैन करने लगती है ।

यह कहानी काफी लंबी है इसमें तीन पीढ़ी के लोग मुहल्ले को आबाद करते हैं और बाहर के लोग भी वहाँ आकर रहने लगे हैं । शंभु गुप्त का कथन 'आवाज़ें' कहानी पर ठीक ही बैठता है "लेकिन एक भारी-भरकम मनहूस पहाड़ बहती हुई नदी के बीचों-बीच जब आपने डाल दिया तो नदी आखिर क्या करे । न चाहते हुए भी बाढ़-जैसा दृश्य तो फिर पैदा होना ही है । फिर भी, फिर भी इस नदी की सिफत ऐसी है कि जलज़ले के बाद खुद इसका उफान बैठ जाता है और शांत तरीके से बहने के यह नए रास्ते तलाशने में लग जाती है ।"[28]

भीष्मजी की कहानी ***'झुटपुटा'*** सन् 1984 में दिल्ली में हुए हिन्दू-सिक्ख दंगो के समय लोगों में फैले दहशत और डर को लेकर लिखी गयी है । इन्दिरा गांधी की हत्या के बाद सिक्खों की निर्मम हत्या और उनका स्थानांतर जैसी घटनाएं हमें फिर से विभाजन की त्रासदी की याद दिलाती है, किन्तु इसकी विडंबना यह है कि अपने ही देश में अपने ही लोगों के बीच दुःख और पीड़ा का अनुभव । कहानी में सब जगह बंद के ऐलान के कारण लोग मुसीबत में जी रहे थे । ज्यादातर दूध की गाड़ियों के डाइवर सिक्ख होने से सबसे बड़ी तकलीफ बच्चों को दूध मिलने में हो रही थी । कहानी के अंत में दूध के

इन्तज़ार में खड़ी लंबी कतार में दूध की गाड़ी देखते ही जान आ जाती है । डाइवर की सीट पर सरदार को देखकर कन्हैयालाल ने पूछ ही लिया "सरदारजी, आप कैसे—?"[29] डाइवर ने कहा "बाबा, बच्चों ने दूध तो पीना है ना । मैंने कहा, चल मना, देखा जाएगा जो होगा । दूध तो पहुंचा आए ।"[30] इस प्रकार यह कहानी मानवीय संवेदना की कहानी है, जहाँ गलत तत्वों की विभाजन की कोशिश और मज़बूती से मानवीय रिश्तों को प्रेम की डोर से बाँधती है ।

वस्तुतः हम कह सकते हैं कि भीष्मजी करीब पचास साल से भी ज्यादा समय लेखन के क्षेत्र में रहे और इस दौरान देश विभाजन की घटना को उन्होंने इतना भोगा है कि उसके बाद जब भी मानवीय रिश्तों को तोड़नेवाली घटना होती है, उनको फिर से उस घटना पर लिखने के लिए मजबूर कर देती है । कपिल तिवारी लिखते हैं "क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि भीष्म साहनी की अधिकांश कहानियाँ उस समय और घटना तथा परिवेश में बार-बार लौट जाना चाहती हैं जिसका संबंध हमारे देश के बँटवारे से है । खूनी सांप्रदायिक दंगे, शरणार्थियों के काफिले, विस्थापितों की समस्या और वर्गघृणा का ज़हर अब तक किसी न किसी रूप में उनकी चेतना को जैसे लगातार सालता रहा है ।" इस संबंध में शंभु गुप्त का कथन भी योग्य है "इस अन्तहीन सिलसिले का पहला दृश्य वह था जब बँटवारा हुआ, दूसरा दृश्य वह था जब हिन्दू-सिख दंगे हुए और तीसरा दृश्य वह था जो अभी-अभी गुजरा है और अभी भी जिसकी आँच सुलग रही है – गुजरात का नरसंहार । भीष्म साहनी की कहानियाँ इन तीनों महादृश्यों की साक्षी हैं और जैसे वे शर्मसार हैं कि एकबार फिर वही प्रक्रिया उनके माथे पर सवार है ।"[31] गुजरात की घटना के बाद 'स्टार न्युज़' चैनल पर लिए गए साक्षात्कार में भी उनकी मानव को शांति बनाए रखने की बिनती हमें बहुत कुछ कहती थी।

संदर्भग्रंथ

1 – शंभु गुप्त ; 'कहानी खत्म नहीं होती' – आलोचना पत्रिका; 'भीष्म साहनी स्मृति अंक'; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 143 ।

2 – भीष्म साहनी ; पटरियाँ; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण-2002, पृ 22 ।

3 – भीष्म साहनी ; पटरियाँ; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण-2002, पृ 23 ।

4 – भीष्म साहनी ; पटरियाँ; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण-2002, पृ 26 ।

5 – भीष्म साहनी ; पटरियाँ; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण-2002, पृ 27 ।

6 – भीष्म साहनी ; पटरियाँ; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण-2002, पृ 28 ।

7 – भीष्म साहनी ; पटरियाँ; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण-2002, पृ 28 ।

8 – भीष्म साहनी ; पटरियाँ; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण-2002, पृ 28 ।

9 – शंभु गुप्त ; 'कहानी खत्म नहीं होती' – आलोचना पत्रिका; 'भीष्म साहनी स्मृति अंक'; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; पृ 144 ।

2015, RHIMRJ, All Rights Reserved *ISSN:* 2349-7637 (Online)

10 – भीष्म साहनी ; पाली; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ 9 ।

11 – भीष्म साहनी ; डायन; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ 39 ।

12 – भीष्म साहनी ; डायन; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ 40 ।

13 – भीष्म साहनी ; डायन; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ 46 ।

14 – भीष्म साहनी ; डायन; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ 122 ।

15 – भीष्म साहनी ; डायन; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ 123 ।

16 – भीष्म साहनी ; डायन; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ 123 ।

17 – भीष्म साहनी ; शोभायात्रा; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण–2002, पृ 15 ।

18 – भीष्म साहनी ; शोभायात्रा; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण–2002, पृ 16 ।

19 – भीष्म साहनी ; शोभायात्रा; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण–2002, पृ 20 ।

20 – भीष्म साहनी ; निशाचर; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण–2002, पृ 123 ।

21 – भीष्म साहनी ; निशाचर; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण–2002, पृ 125 ।

22 – भीष्म साहनी ; निशाचर; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण–2002, पृ 126 ।

23 – भीष्म साहनी ; निशाचर; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण–2002, पृ 121 ।

24 – भीष्म साहनी ; निशाचर; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण–2002, पृ 53 ।

25 – शंभु गुप्त ; 'कहानी खत्म नहीं होती'– आलोचना पत्रिका; 'भीष्म साहनी स्मृति अंक'; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; पृ 145–146 ।

26 – भीष्म साहनी ; पाली; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ 98 ।

27 – भीष्म साहनी ; पाली; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ 110 ।

28 – शंभु गुप्त ; 'कहानी खत्म नहीं होती'– आलोचना पत्रिका; 'भीष्म साहनी स्मृति अंक'; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; पृ 143 ।

29 – भीष्म साहनी ; पाली; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ 56 ।

30 – भीष्म साहनी ; पाली; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1991, पृ 56 ।

31 – शंभु गुप्त ; 'कहानी खत्म नहीं होती'– आलोचना पत्रिका; 'भीष्म साहनी स्मृति अंक'; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; पृ 144 ।

2015, RHIMRJ, All Rights Reserved *ISSN:* 2349-7637 (Online)